International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 404-406

भारतीय विदेश नीति एशियाई राष्ट्रों के परिप्रेक्ष्य में

Dr. Himanshu Yadav
P.D.F Department of Political Science, University of Allahabad, Uttar pardesh, Pardesh

सारांश
एशिया महत्वपूर्ण मौलिक सभ्यताओं, विस्तृत पुरातन राज्यों के आविर्भाव तथा उत्थान का स्थल रहा, जिन्होंने विश्व सभ्यता के विकास में अपना विशिष्ट योगदान किया। मानवजाति, उसकी आधुनिक संस्कृति को एशियाई राष्ट्रों से इतना अधिक प्राप्त हुआ कि सभी उपलब्धियों का संक्षेप में भी उल्लेख करना कठिन है। एशिया में तीन प्रमुख विश्व धर्मों (ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म और इस्लाम), कई दार्शनिक–नैतिक सिद्धान्तों, उदाहरण के लिए, कंफ्यूशी धर्म का उदय, वास्तुशिल्प, कला तथा साहित्य का जन्म हुआ था, जिनका प्रभाव एशिया के बाहर दूर–दूर तक फैल गया है।

मूल शब्द: मौलिक सभ्यताओं, आधुनिक संस्कृति, एशियाई राष्ट्रों

प्रस्तावना

एशिया पृथ्वी का सबसे विस्तृत भाग (संलग्न द्वीपों सहित 4 करोड़ 35 लाख वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र, अर्थात् कुल थल क्षेत्र का 29.2 प्रतिशत भाग) और सबसे अधिक जनसंख्या वाला महाद्वीप है। विशाल यूरेशियाई महाद्वीप के 80.5 प्रतिशत क्षेत्र में फैला हुआ है। यूरोप के साथ उसकी 5 हजार किलोमीटर से अधिक लम्बी थल सीमा–रेखा सोवियत संघ के क्षेत्र को काटती है और बाल्कन प्रायद्वीप से वह संकरे जलडमरूमध्यों से अलग किया हुआ है। एशियाई महाद्वीप का उत्तर–पूर्वी भाग अलास्का से, दक्षिण–पूर्वी आस्ट्रेलिया तथा ओसेनिया से, और दक्षिण–पश्चिमी भाग अफ्रीका से लगा है। एशिया उत्तरी हिममहासागर, प्रशांत तथा हिन्द महासागरों और भूमध्य सागर से घिरा हुआ है, जो अटलांटिक महासागर से जुड़ा है। भौगोलिक दृष्टि से एशियाई महाद्वीप की स्थिति बहुत सुगम है, अतः यहाँ के देशों के सक्रिय विदेशनीतिक कार्यकलाप की अच्छी संभावना मौजूद है।

युद्धोत्तर काल में एशिया के राजनीतिक मानचित्र का रूप कैसा था? उस पर 39 राज्य अंकित थे, जिनमें से कुछ राज्य समाजवादी शिविर और अधिकांश देश पूंजीवादी व्यवस्था के अंग थे। एशिया में 6 समाजवादी राज्य स्थित हैं : सोवियत संघ, चीन, वियतनाम, को–रियाई लोक जनवादी, जनतंत्र, मंगोलिया और लाओस, जिनका कुल क्षेत्रफल 2 करोड़ 80 लाख वर्ग किलोमीटर है। समाजवादी शिविर के सदस्य–देशों के अलावा एशिया में और 33 राज्य स्थित हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल 1 करोड़ 55 लाख वर्ग किलोमीटर है।

परन्तु एशिया के अधिकांश राष्ट्रों के लिए नवीन इतिहास का काल ऐसा काल रहा, जब उन्होंने विश्व की समस्याओं की तो बात ही दूर, महाद्वीपीय तथा क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान में भी वस्तुतः भाग नहीं लिया।

यूरोप के पूँजीवादी राज्यों और संयुक्त राज्य अमरीका के दबाव ने लम्बे अर्से तक अधिकांश एशियाई देशों को औपनिवेशिक और अर्ध–औपनिवेशिक स्थिति में बनाये रखा था। जवाहरलाल नेहरू ने इस सिल–सिले में लिखा था कि एशिया ''एक दूसरे का विरोध करने वाले यूरोपीय साम्राज्यवादियों का युद्ध–क्षेत्र बन गया'' और स्वयं एशियाई देश ''एक दूसरे से अलग हो गये''।

सबसे कट्टर कम्युनिज्म विरोधी भी इस सुविदित तथ्य का खण्डन नहीं कर सकते कि पश्चिमी पूंजीवादी राज्यों और 19वीं सदी के आरम्भ से साम्राज्यवाद ने ही एशियाई देशों को उनके संप्रभु अधिकारों से वंचित किया और उनके सामाजिक–आर्थिक विकास को रोके रखा। यह भी सुज्ञात है कि औपनिवेशिक व्यवस्था का पतन महान अक्टूबर समाजवादी क्रांति की विजय, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग के अपने अधिकार प्राप्त करने के संघर्ष, उसके द्वारा एशियाई राष्ट्रों के मुक्ति आंदोलन के समर्थन से अभिन्न रूप से जुड़ा था। जर्मनी तथा सैन्यवादी जापान की 1945 में पूर्ण पराजय के बाद, जिसमें सोवियत संघ ने निर्णायक भूमिका अदा की, उपनिवेशवादी साम्राज्यों के पतन की प्रक्रिया अपनी पराकष्ठा पर पहुँची।

अमेरिका ने ब्रिटेन द्वारा सौंपे गये दायित्व को न केवल बड़ी ही जिम्मेदारी से संभाला अपितु वह राष्ट्र संघ की सहायता तथा अपनी मदद के माध्यम से शिक्षित वर्ग पर अपना प्रभाव कायम रखने और उसको बढ़ाने के प्रयास में लगा रहा। साम्यवाद का विस्तार रोकने के नाम पर कई सैन्य संधियाँ भी की गयीं। अमेरिका ने मानवाधिकार के प्रति लोगों की ललक बढ़ायी और उन सभी सुविधाओं को दिलाने का स्रोत बना जो साम्यवादी देशों में प्राप्त नहीं थीं।[1]

प्रजातांत्रिक मूल्यों में आस्था रखने वाले भारत और अमेरिका विश्व के दो विशाल लोकतांत्रिक देश है। तर्क दिया जाता है कि भारत, जो सबसे बड़ा लोकतंत्र है और अमेरिका, जो सबसे शक्तिशाली लोकतंत्र है, दोनों को स्वभाविक मित्र होना चाहिये। क्योंकि प्रजातांत्रिक देश मित्रता का पालन करते हुए आपस में कभी लड़ते नहीं जैसा कि प्रजातांत्रिक शान्ति (Democratic Peace) का सिद्धान्त मानता है। लेकिन पूरे शीतयुद्ध के दौरान इनके पारस्परिक सम्बन्ध आकांक्षाओं के अनुकूल न होकर मतभेद उत्पन्न करने वाले रहे हैं। राष्ट्रीय हितों में प्रत्यक्ष संघर्ष न होते हुए भी शीतयुद्ध काल के दौरान दोनों देशों के विचारों व उद्देश्यों में भिन्नता इस मतभेद का मूल कारण माना जाता है।[2]

द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था में साम्यवादी सोवियत संघ के विस्तार को सीमित कर अमेरिका द्वारा प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लगातार प्रयास किया गया। जबकि भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति का अनुसरण कर अपने विदेश नीति की स्वायत्ता को बरकरार रखते हुए अपनी विशेष अवस्थिति आकार एवं शक्ति के कारण विश्वमंच पर अपनी पहचान कायम करने का प्रयास जारी रखा।[3]

अमेरिका की दक्षिण एशिया में कभी भी विशेष रूचि नहीं रही है, अपितु वह इस क्षेत्र के महत्व को अपने वैश्विक हितों के अनुरूप ही देखता रहा है। शीतयुद्ध के दौरान साम्यवाद के विस्तार को रोकना उसकी प्रथम प्राथमिकता रही और इसी परिप्रेक्ष्य में उसने

दक्षिण एशिया के महत्व को आंका। जबकि भारत की चिन्ता दक्षिण एशिया की स्थिरता को लेकर थी जो अमेरिकी–पाक सम्बन्धों के कारण असन्तुलित होती जा रही थी। इस असंतुलन को दूर करने हेतु ही भारत को सोवियत संघ की ओर झुकना पड़ा।[4]

पिछले कुछ समय से वैश्विक राजनीतिक में एशिया खासा महत्वपूर्ण बना हुआ है। इसके केंद्रों में तमाम समीकरण व नीतियाँ (सामरिक, आर्थिक व राजनीतिक) निहित हैं। ये समीकरण जिन पर आधारित होने हैं, उनकी भूमिका में भारत, जापान, ऑस्ट्रेलिया और चीन जैसे देश हैं। लगभग एक दशक पूर्व (1996 में) रूस के तत्कालीन प्रधानमंत्री प्रिमाकोव ने भारत–चीन–रूस त्रिकोण को एक नये ध्रुव के रूप में देखने की वकालत की थी। लेकिन उस समय इन देशों की घरेलू स्थितियों और कुछ संकोचों के चलते इसे व्यावहारिक रूप देने से परहेज किया गया था। 10 वर्ष बाद जुलाई, 2006 में भारत, रूस और चीन के नेताओं ने जी–8 के सेंट पीटर्सबर्ग सम्मेलन में एक औपचारिक बैठक में प्रिमाकोव के मुद्दे को फिर से हवा दे दी। भारत–रूस–चीन के साथ एक नये ध्रुव के रूप में भारत–जापान–ऑस्ट्रेलिया–अमेरिका की चर्चा भी पिछले कुछ दिनों से जोरों पर चल पड़ी। इसी वर्ष जून में जर्मनी में जी–8 शिखर वार्ता के बाद भारत, जापान, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के राष्ट्राध्यक्षों ने इस चतुष्कोणीय ध्रुव पर अपनी सहमति की मुहर भी लगा दी। इस व्यूह रचना को एपेक की सिडनी (सितम्बर 2007) बैठक में दोहराया गया, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि 21वीं सदी में शांति की बात तब तक बेमानी है, जब तक सामुद्रिक शक्तियों के बीच यूजेआईए (अमेरिका, जापान, भारत, ऑस्ट्रेलिया) संधि संगठन बनाने पर सहमति नहीं हो जाती।

क्या वास्तव में अमेरिका, रूस या चीन एशिया में शांति स्थापना करने के लिए चिंतित हैं? या इस प्रकार की व्यूह रचना कर वे एशिया पर वर्चस्व स्थापित करने के एक नये दौर की शुरूआत कर रहे हैं। पूर्वी एशिया में जिस प्रकार का सुरक्षा फ्रेमवर्क (हब और बीम पर आधारित) निर्मित हुआ है, उसमें अमेरिका केन्द्रीय शक्ति है।[5] चीन अब पूर्वी एशियाई समुद्र पर आधिपत्य कर अपनी ताकत बढ़ाने की मुहिम में जुट गया। पूर्वी एशिया में चीन का दबदबा एक बार कायम हो गया तो भारत के लिए अपने हितों की रक्षा करना कठिन हो जायेगा।

अमेरिका के पास जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे मित्र हैं, जबकि चीन के पास ऐसे मित्रों का अभाव है। म्यांमार के प्रति चीन के रवैये से भी साफ झलकता है कि वह उसे दक्षिण–पूर्व एशिया में अपने क्षत्रप के रूप में खड़ा करना चाहता है। इन स्थितियों में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। वह जिस पाले में जायेगा, उसका पलड़ा भारी होगा। अमेरिका भी अब इस बात को मानने लगा है कि दुनिया के नक्शे पर भारत का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है।

लेकिन इन सबसे अलग चीन का प्रभुत्व विस्तार समूचे एशिया में महसूस किया जा रहा है। थाइलैण्ड का रेड कैप मूवमेंट अमेरिकी सत्ता की चूलें हिला रहा है। म्यांमार के कोको द्वीप पर निर्मित चीनी नौसैनिक अड्डा, बांग्लादेश के चटगाँव बंदरगाह के आधुनिकीकरण का प्रस्ताव, श्रीलंका के होटमतोडा बंदरगाह पर चीनी नियंत्रण, पाकिस्तान के ग्वादार बंदरगाह के आधुनिकीकरण इत्यादि के द्वारा, चीन ने अमेरिका के सामुद्रिक प्रभुत्व की अवधारणा पर सांघातिक प्रहार किया है। वर्तमान में चीनी नौसेना समूचे हिंद महासागर को अपने प्रभाव क्षेत्र में समेट चुकी है। वेनेजुएला और ब्राजील जैसे गैर एशियाई देशों में चीन का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। हाल ही में चीन की शह पर हुए ईरान–तुर्की परमाणु समझौते से यूरोपीय देशों की रातों की नींद हवा हो गयी है। वेनेजुएला, ब्राजील, ईरान और पाकिस्तान की धुरी बनाकर चीन ने विश्व समुदाय के सामने अपनी नेतृत्व क्षमता का प्रदर्शन किया है। हाल ही में जलवायु मुद्दे पर हुए कोपेनहेगन सम्मेलन में चीन ने चतुराई के साथ ब्राजील व भारत जैसे देशों के साथ एक मंच बनाकर एक ओर पश्चिमी कूटनीतिक वार को भोथरा कर दिया तो वहीं दूसरी ओर खुद प्रतिबंधों से बचने के साथ ही एशियाई नेतृत्व के दावे को और पुख्ता कर दिया। कोपेनहेगन सम्मेलन में चीन की विदेश नीति की आक्रमकता को साफ देखा जा सकता था। वर्तमान में समूचे विश्व में ड्रैगन की पदचाप की गूँज या अनुगूँज सुनाई पड़ रही है। कूटनीति के मामले में चीन, भारत पर इक्कीस ही साबित हो रहा है। भारत जहाँ अपनी घरेलू समस्याओं से ही घिरा रहता है, वहीं चीन अपने पड़ोसी देशों से मेलजोल बढ़ाने में लगा हुआ है। अपनी आक्रामक कूटनीति के जरिये चीन भारत की घेरेबंदी में लगा हुआ है। अरब सागर, बंगाल की खाड़ी, पाकिस्तान, म्यांमार और दूसरे देशों में सैन्य अड्डे इसी घेरेबंदी का उदाहरण हैं।

भारत के भी अपने पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्ध हैं। लेकिन ये मधुर सम्बन्ध केवल कागजों और ऊपरी सतह पर ही हैं। जब भी भारत को किसी मामले में पड़ोसी देशों के सहयोग की आवश्यकता होती है तो ये देश कन्नी काट जाते हैं या अपेक्षित सहयोग नहीं करते।

संप्रग1 साल 2004 में वाजपेयी सरकार के चुनाव हारने के बाद सत्तारूढ़ हुआ था। कुछ समय विपक्ष में बैठने के कारण यह तरोताजा था तथा इसके दिमाग में कुछ ठोस मुद्दे घर किये हुए थे और उन्हीं के अनुरूप संप्रग ने ऐसी कुछ नीतियां और सुधार लागू किये जिनसे व्यापार सहित भारत को विभिन्न मोर्चो पर खासा लाभ हुआ।

अपने दूसरे सत्ताकाल साल 2009–14 के लिये लागू विदेश व्यापार नीति के क्रियान्वयन में संप्रग सरकार ने निर्बाध समन्वय पर जोर दिया है। सरकार ने निर्यात से संबंधित गतिविधियों में शामिल होने की लागत घटाने का भी प्रयास किया है।[6] लेकिन 2009–14 की विदेश व्यापार नीति में रोजगार बढ़ाने की सबसे बड़ी जरूरत की उपेक्षा की गई है। इसके साथ ही श्रमसाध्य माल के निर्यात को बढ़ावा देने में भी यह नीति नाकाम है। संप्रग2 सरकार की विडंबना दरअसल उसके सत्तारूढ़ होने का समय रही। उस समय वैश्विक अर्थव्यवस्था पर भारी मंदी का दबाव था तथा सरकार को उद्योग एवं व्यापार के लिये भारी रियायती उपायों की घोषणा करनी पड़ी थी। इसके लिये हालांकि सरकार को यह आलोचना भी सहनी पड़ी कि करदाता की कमाई को इस प्रकार खर्च करना मुनासिब नहीं है। सरकार के बैकिंग संबंधी कड़े नियमों तथा अपने रूपये'' को पूरी तरह परिवर्तनीय नहीं बनाने के कारण भारत मंदी की चपेट में आने से बहुत हद तक बचा रहा।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की विदेश नीति एनडीए सरकार की नीतियों के मुकाबले भारतीय अर्थव्यवस्था के बदलाव के लिहाज से ज्यादा सफल रही है। मोदी के संसार में भारत के प्रभाव क्षेत्र के विस्तार को लेकर डॉक्टर राजा मोहन ने लिखा है, प्रधानमंत्री मोदी की दीर्घकालिक विदेश नीतियों के लक्ष्य तथा उनकी राजनीतिक इच्छा शक्ति ने 2014 के मध्य से मजबूती के साथ भारतीय कूटनीति में असामान्य ऊर्जा भर दी है।

प्रधानमंत्री मोदी नीत एनडीए तथा डॉक्टर मनमोहन नीत यूपीए के बीच सबसे स्पष्ट अंतर है प्रधानमंत्री मोदी को अपने पड़ोसियों पर ज्यादा ध्यान रखना। दक्षिण एशिया में भारत के प्रभाव क्षेत्र पर पकड़ बनाने तथा चीन की बढ़ती भूमिका पर लगाम लगाने को लेकर प्रधानमंत्री ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में अपना रूख स्पष्ट कर दिया था, जब उन्होंने दक्षिण एशियाई देशों के राष्ट्राध्यक्षों को समारोह में आमंत्रित किया था।

उनका पहला दौरा भूटान का था। यूपीए–I के दौरान डॉक्टर मनमोहन सिंह का पहला विदेशी दौरा बंगाल की खाड़ी के आस–पास वाले देश BIMSTEC का था। उन्होंने मई 2015 में देश की भू–सामरिक हितों के लिए हिन्द महासागर के महत्व को स्पष्ट करने के लिए सिशेल्स, मॉरीश तथा श्रीलंका की यात्राएँ की। भारत ने बांग्लादेश के साथ द्विपक्षीय तथा ढांचागत संधियों की पकड़ बनाये रखने के लिए एक करार किया है, जिसका लक्ष्य सड़क, रेल, समुद्र, विद्युत निकासी लाइन्स, पेट्रोलियम पाइपलाइन तथा डिजिटल जुड़ाव है। भारत जब चिटगांव तथा मोंगला बंदरगाह का इस्तेमाल कर सकता है तथा इसके जरिये उत्तर पूर्व तथा दक्षिण पूर्व एशिया में अपनी बेहतर पहुंच बना सकता है।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान एशिया की एकजुटता के नजरिये से देखें तो नेहरू ने अग्रणी एशिया के कल्पना की थी, लेकिन जटिल सच्चाई सामने आते ही कल्पना धराशायी हो गई, क्योंकि एशियाई देश चाहते ही नहीं थे कि भारत उनका अगुवा बने। आर्थिक सुधार के दौर में कनेक्टिविटी और वाणिज्यिक गतिविधियां बढ़ी भी, लेकिन धीरे–धीरे इसमें सामरिक संबंधों का दायरा बड़ा हो गया। हालांकि भारत तब भी आसियान में वार्ता साझेदार बना रहा। भारत को अब क्षेत्र में लोग बैलेंसर के रूप में मान्यता देने लगे हैं। ऐसा इसकी आर्थिक और सैनय शक्ति के कारण माना जा रहा है। दक्षिण एशिया क्षेत्र के सभी देश बाजार अर्थव्यवस्था से बंधे हुए है, वे अपने विकास के लिए बेहतर द्विपक्षीय संबंध चाहते हैं लेकिन राष्ट्रीय हित की रक्षा का आंतरिक रूप से उन पर जबर्दस्त दबाव भी है।

भारत के क्षेत्रीय हित को सुधार के पहले की अवधि से नहीं आंका जा सकता। चीन ने अपने कनेक्टिविटी और आधारभूत परियोजनाओं द्वारा दक्षिण एशिया क्षेत्र में अच्छी घुसपैठ बना ली है, जबकि पाकिस्तान ने कश्मीर में अपना हस्तक्षेप बढ़ा दिया है। अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया और अन्य विकासशील देशों से भारत के संबंध ने उसे तमाम चुनौतियों का सामना करने के लिए कूटनीतिक अवसर दिए हैं, लेकिन उनका भी क्षेत्र पर कोई प्रभाव नहीं है। निश्चित रूप से अमेरिका से भारत के बढ़ते संबंधों के चलते भारत को लाभ हुआ है। खासतौर से अंतर्राष्ट्रीय मंचों और क्षेत्रीय मुद्दों पर अमेरिका का समर्थन मिला है। हाल ही में अमेरिका के साथ लाजिस्टिक समझौते से दुनिया भर में अमेरिकी बेस खासतौर से हिंद और प्रशान्त क्षेत्र में अमेरिकी बेसों की सुविधा पाने में भारत सफल रहा है। लेकिन भारत के अमेरिका, जापान और वियतनाम से करीबी संबंध से रूस छिटकता जा रहा है, उसका झुकाव पाकिस्तान की तरफ बढ़ रहा है। चूंकि क्रीमिया पर रूस का नियंत्रण है, इसलिए रूस और चीन ने विरोध किया था, बावजूद इसके भारत ने वियतनाम का साथ नहीं छोड़ा है। प्रधानमंत्री मोदी ने सितंबर 2016 में वियतनाम की यात्रा की।

गत डेढ़ दशक में किसी भारतीय प्रधानमंत्री की यह पहली वियतनाम यात्रा थी। इस दौरे में सामरिक साझेदारी को लेकर कई समझौते हुए। भारत वियतनाम सैन्य सहयोग के नाम पर 500 मिलियन डालर रक्षा उपकरण खरीद के लिए देने पर सहमति बनी। अगस्त 2016 में भारत वियतनाम संबंधों पर सिंपोजियम का आयोजन हुआ था। सेंटर फार इंडिया स्टडीज की स्थापना के दूसरी वर्षगांठ के अवसर पर इसका आयोजन किया गया था। चीन और रूस सैन्य और असैन्य दोनों ही मामलों के संसाधनों में बहुत ही संभावनाशीह हैं। चीन की सैन्य संभावनाएं भारत से कहीं बहुत ज्यादा श्रेष्ठ हैं। इसकी अर्थव्यवस्था भारत से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ है। यह अपने सैन्य मद में भारत से कहीं ज्यादा बहुत निवेश कर सकता है। पीसीए के फैसले के बाद 11वें ईस्ट एशिया शिखर सम्मेलन में दक्षिण चीन सागर पर चीन के रूख को ज्यादा महत्व नहीं दिया। जो कि आसियान देशों में चीन की कूटनीतिक, आर्थिक और सैन्य ताकत को महत्व न देने जैसा ही है।

सन्दर्भ

1. देशान्तर– खण्ड एक, पृ0 21
2. सी0 राजा मोहन 'इन सर्च ऑफ पोलिटिकल कन्वरजेन्स', क्रांति वाजपेयी एवं अमिताभ मट्टू द्वारा सम्पादित पुस्तक ''इंगेज्ड डेमोक्रेसीज : इण्डो–यू0 एस0 रिलेशन्स इन द 21st सेन्चुरी'', न्यू दिल्ली, 2000, पृ0 29
3. हरीश कपूर, ''इन्डियाज फॉरन पॉलिसी : शैडो एण्ड सब्सटान्स'', न्यू दिल्ली, 1994; पृ0 208
4. गैरी के बर्ट्रज, सीमा गहलौत और अनुपम श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित पुस्तक, ''इन्गेजिंग इण्डिया'', न्यूयार्क 1999; पृ0 194
5. डॉ0 रविकान्त दुबे : ''भारतीय विदेश नीति के नये आयाम'', पृ0 42–44
6. मिश्रा, के0 के0 सुभाष शुक्ला– अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धांत, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0 लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010, पृ0–25।